आध्यात्मिक एवं भौतिक समृद्धि

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। आध्यात्मिकता के ही कारण भारत को विश्वगुरू का दर्जा प्राप्त है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के मेल से जो संक्रमण आया भौतिक समृद्धि उसी का परिणाम है। हमारे देश में सर्वप्रथम आत्मचिंतन हुआ। हम कौन हैं? कहां से आये हैं? मरने के बाद यहां से आत्मा कहां जाती है। आत्मा का अस्तित्व है या नहीं इन सब विषयों पर भारतीय वाङ्मय में गम्भीर चिंतन हुआ है। भारतीय चिंतकों ने भौतिक समृद्धि को अधिक महत्व नहीं दिया। उनके विचार में धन नश्वर है। आज है कल नहीं रहेगा। इसलिए ऐसी सम्पदा को प्राप्त किया जाये जिसका अस्तित्व त्रिकाल में वर्तमान रहता है। इसलिए भारतीय शास्त्र वेत्ताओं ने अपने चिंतन के केन्द्र में आत्मा को रखा। उपनिषदों के एक प्रसंग के अनुसार महर्षि याज्ञवल्य की दो पत्नियां थी– मैत्रेयी, कात्यायनी इसमें से एक श्रेयकामी थी और दूसरी प्रेयकामी थी। अपने अंतिम समय में अपनी सम्पत्ति का बटवारा करने के लिए अपनी दोनों पत्नियों को बुलवाया और सम्पत्ति बांटने की इच्छा की। जो अध्यात्म प्रिय थी उसने कहा कि हम उस सम्पत्ति को लेकर क्या करेंगे जो हमें शाश्वत सुख न दे सके। हमें तो ऐसी सम्पत्ति दिजिए जो जीवन नौका को पार लगा दें। किन्तु दुसरी जो भौतिक सुख चाहने वाली थी उसने महर्षि की सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त की। भौतिक सम्पत्ति विनश्वर है और आध्यत्मिक सम्पत्ति शाश्वत। जीवन की समग्र समस्याओं का स्वरूप और समाधान समझने के लिए हमें उसके दोनों पक्षों को समझना आवश्यक है। एक वह है जो शरीर से सम्बन्धित है और दूसरा वह है जो अन्तरात्मा पर निर्भर है। शरीर की समस्याओं और आवश्यकताओं का सीधा सम्बन्ध भौतिक सुखों से है। भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधाएं तथा इंद्रियों के अपने–अपने विषय शरीर से संबंधित है। ये वस्तुएं उचित समय पर और उचित मात्रा में जब मिलती रहती है तो शरीर की तुष्टि होती रहती है। पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय और मन ये एकादश इंद्रियां है। मन का विषय है लोभ, मोह और अहंकार ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन की जितनी मात्रा में संतुष्टि होती है उतना ही शरीर प्रसन्न रहता है। शारीरिक जीवन चर्या

का प्रयास प्रायः इन्हीं कृत्यों में लगा रहता है। शरीर तुष्टि में इंद्रिय तुष्टि भी एक विषय है। आंख, कान, नाक, जीभ और जननेन्द्रिय के अपने–अपने विषय है। इनकी लिप्सा ऐसी है जो भोगों की थकाने वाली मात्रा मिल जाने पर भी संतुष्ट नहीं होती। इच्छा का कोई अंत नहीं। यह आकाश के समान अनन्त है। इच्छा की पूर्ति में ही मानव लगा रहता है और भौतिक सुख–साधनों की खोज जीवनभर चलती रहती है। यह संग्रह की प्रवृत्ति भौतिक लालसा को उत्पन्न करती है। जबकि मनुष्य को खाने के लिए चार रोटी, पहनने के लिए दो गज कपड़ा और सोने के लिए एक चारपायी की आवश्यकता होती है। इससे अधिक यदि उसे दिया जाये तो उसका उपभोग सम्भव नहीं। दस रोटी थाली में परोसी जाये तो पेट में उसके लिए जगह ही नहीं है। दुगने चौगुने आकार की चारपाई सोने के लिए दी जाये तो वह खाली पड़ी रहेगी। अनावश्यक जगह घेरेगी। अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होंगी। शरीर को थोड़ी सी आवश्यकता है इसकी पूर्ति के लिए मनुष्य परिश्रम कर सकता है। इंद्रियों को सम्बन्ध अपने–अपने विषयों से है कितने ही सुन्दर दृश्य क्यों न हो उन्हें थोड़ी देर तक देखने में आंखे थक जाती है। कानों को कितना ही मधुर स्वर सुनने को मिले वे भी ऊब जाते है। जिभ स्वाद चखने में कुछ ही मिनट लगाती है। जननेन्द्रियों का स्वाद भी कुछ ही मिनट का है। इसके बाद उससे भी विरति हो जाती है। इंद्रियजन्य लिप्साओं की भी सीमा है। इससे अधिक कार्य करने पर इंद्रियां थक जाती है। केवल मन ही ऐसा है जिसकी आशा, आकांक्षा बढ़ती रहती है। मन को वश में करने के लिए अध्यात्म और योग ही सबसे बड़ा साधन है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मनरूपि घोड़े को तपस्या से वश में किया जा सकता है। प्रायः साधारण मनुष्य की दिनचर्या जीवन की आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में ही व्यतीत हो जाती है। जिस चीज के विषय में चिंतन करना है उसके विषय में वह चिंतन ही नहीं करता और व्यर्थ में ही पूरा जीवन गवाह देता है। अतः जीवन का महत्वपूर्ण चिंतन का विषय है–अन्तरात्मा इसे अपनाने में शांति ही शांति है, संतोष ही संतोष है, आनन्द ही आनन्द है, लाभ ही लाभ है। शारीरिक आवश्यकताओं को सीमित रखने पर सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श सधता है। भोजन पेट में कम रखा जाये तो आरोग्य और दीर्घ जीवन का लाभ प्राप्त होता है। वस्त्र सादा और कम पहनने पर सब जनता का उपहार मिलता है। तड़क–भड़क

खर्चीलें फैशन वाले वस्त्र पहनने पर विज्ञजनों की आंखों में अपना मूल्य गिरता है। इंद्रियों का स्वाद जिसे जितना प्रिय है उसका स्वास्थ्य उतना ही गिरता है और जिनका सभी इंद्रियों पर नियंत्रण है। वे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अक्षुण्ण बनाये रखते है। उन्हें चरित्रवान कहा जाता है और उन्हें सम्मान मिलता है। आध्यात्मिकता अपनााने वाले को संयमी और संतोषी बनना पड़ता है। ऐसे व्यक्तियों को कभी आर्थिक तंगी नहीं सताती। हमारे शास्त्रों में संतोष को सुख का सबसे बड़ा लक्षण कहा गया है। ईमानदारी से जितना कमाया जा सके उसीसे व्यवस्था पूर्वक खर्च चलाया जाना चाहिए। मोह रखना हो तो सारे संसार को ही अपना क्यों न माना जाये। वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श क्यों न अपनाया जाये।